नारी-सम्बन्धी कतिपय शब्दों की व्युत्पत्ति

डॉ. सुभद्रा जोशी
निदेशक - पद्म श्री नारायण दास पाण्डुलिपि
शोध संस्थान जयपुर

संहिता-काल में नारी-समाज की सामाजिक, मानसिक, बौद्धिक तथा सांस्कृतिक स्थिति को जानने हेतु "नारी" के लिये प्रयुक्त कतिपय शब्दों का दिग्दर्शन यहाँ कराया गया है।

नारी-

"नृ" अथवा "नर" से बना नारी-शब्द निःसन्देह यजुःसंहिता में बहुत ही कम प्रयुक्त हुआ है। साम-संहिता में तो इसका प्रयोग हुआ ही नहीं। जहाँ तक अथर्व-संहिता का सम्बन्ध है, उसमें "नारी" और "नारि" दोनों पदों का सात-सात बार प्रयोग हुआ है। ऋक्-संहिता में नारी शब्द का प्रयोग बहुतायत रूप में हुआ, जिसका फल है कि संहिताकाल के परवर्ती वाङ्मय में "नारी" शब्द चर्चा का मुख्य, विषय बन गया।

नृ + अन् + ङीन् = नारी अथवा नर + ङीष् - नारी इन दोनों व्युत्पत्तियों को महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि ने ठीक मानते हुए "नुर्धम्या नारी, नरस्यापि नारी" (महाभाष्य ४/४/९) का महत्त्व प्रतिपादित किया है।

नृत्त्व, नरत्त्व जाति-विशिष्टा स्त्री, नारी मानी गयी है। नृ अथवा नरशब्द से "नृनरयोवृद्धिश्च" तथा "शाङ्गरवादि०" सूत्र से ङीन् होकर नारी शब्द बनता है।

महर्षि यास्क ने "नारी" के मूलभूत शब्द "नर" की व्युत्पत्ति नृत् (नाचना) धातु से करते हुए अपनी अमर-रचना निरुक्त (५१३) में "नराः मनुष्याः नृत्यन्ति कर्मसु" कहा है। इस व्युत्पत्ति से स्पष्ट है कि नर अपने कार्यों के सम्पादन में अपने अंगों का सञ्चालन करता था, इसीलिये उसे "नर" कहा गया है। "नारी" शब्द भी अपने मूलभूत शब्द "नर" के कारण उपर्युक्त विशेषणों से अलंकृत था और वह भी नर की तरह समाज में अपने सभी अधिकारों का प्रयोग करके अर्द्धनारीश्वरत्व की परि-कल्पना को सार्थक करता था।

ऋक्-संहिता ७।२०।५, ७५५८, ८७७८, १०।१८।७, १०/८६।१०-११ में "नृ" से बने नर और नारी का प्रयोग वीरता का कार्य करने, दान देने एवं नेतृत्व करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। संहिताओं में नर के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर

घर का कार्य करने, यज्ञ करने, दान देने, अतिथियों, साधुओं, भिक्षुओं का स्वागत-सत्कार करने तथा युद्ध में अपने पति के साथ जाने के वृत्तान्त उपलब्ध है, जिससे उस समय की वस्तुस्थिति का परिज्ञान हो जाता है।

विवाहकाल में कन्यादान और पाणिग्रहण के बाद "लाजा-होम" के अवसर पर कन्या के लिये सर्वप्रथम "नारी" शब्द का प्रयोग हुआ है (पाराशर-गृह्यसूत्र १।६।२, अ० १४।२।६३), क्योंकि इससे पूर्व उसका नर के साथ सम्बन्ध नहीं था। "नारीत्व" की भावना आते ही उसके मुख से निकल पड़ता है- **"आयुष्यमानस्तु मे पतिः", "एधन्तां ज्ञातयो मम"**। नारी होने के बाद ही वस्तुतः उसे सौभाग्य की प्राप्ति होती है।

नारि-

अथर्व-संहिता (काण्ड ३।१२।८, ३।२३।५, ११।१।१३-१४, ११।१।२३, १४।२।२०, १४।२।३२, १८।३।२) में ह्रस्व इकारान्त "नारि" शब्द का प्रयोग हुआ है। सायण के मत से "नारि" का भाव नरों का उपकार करने से है। यही कारण है कि आपने "नृणां महावीराथिनाम् उपकारित्वात् नारिः" कहा है। "न अरिः - नारिः" का प्रतिपादन सायण ने (तै० आ० ४।२।१) किया है। ब्राह्मणग्रन्थों में भी "नारिः" शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

नारी-नारि-विभेद-कारण-

पुरुष-पूरुष शब्द की तरह नारी के भी दो रूप वैदिक-संहिताओं में उपलब्ध होते हैं। व्याकरण की दृष्टि से निरुक्तकार ने इसे जहाँ क्रिया का पुरुष माना है, वहीं ऋक्-संहिता के पुरुष-सूक्त में इसे सहस्र सिरों, आँखों तथा चरणों वाला स्वीकार करते हुए परमपिता परमात्मा की संज्ञा दी है।

पुरुष-पूरुष की तरह संहिताओं में नारी-नारि के भी दो रूप मिलते हैं। क्या युगल रहने को उक्ति-युक्ति यहाँ भी चरितार्थ होती है कि दीर्घ-ऊकारादि पुरुषशब्द के लिये दीर्घ ईकारान्त नारी तथा ह्रस्व-उकारादि पुरुष के लिये ह्रस्व-इकारान्त नारि शब्द का साक्षात्कार हमारे मन्त्रद्रष्टा पुरुषों तथा नारीसमाज ने किया था?

दोनों (नारी-नारि) शब्दों पर दृष्टिपात करने पर सामान्यरूप में कोई विशेष अन्तर इनमें दृष्टिगोचर नहीं होता; परन्तु अथर्वसंहिता को छोड़कर अन्य ऋक्-यजुः-साम में 'नारि' शब्द का प्रयुक्त न होना अवश्य ही मन में एक सन्देह उत्पन्न करता है कि क्या कारण है कि विश्व की सभ्यता के आदिम-ग्रन्थ ऋक् संहिता में, जहाँ नारीशब्द का तो बहुतायत में प्रयोग हुआ है, वहीं "नारि" शब्द का एक बार भी प्रयोग क्यों नहीं हुआ?

लगता है कि सर्वतोभावेन अपने नर के प्रति आत्मसमर्पण करने वाली ऋक् संहिता की स्त्री, अथर्वसंहिता में आकर कुछ बदल गयी और उसके मन में पुरुषवर्ग के प्रति क्षोभ की भावनाओं ने जन्म ले लिया। यही कारण है कि वैदिक संहिताओं के श्रेष्ठ भाष्यकार सायण को "नारि" शब्द की व्युत्पत्ति में न अरिः = नारिः अथवा **"नृणां महावीरार्थिनाम्**

उपकारित्वात् नारिः" कहना पड़ा है।

अथर्वसंहिता (७७३८।४) में एक स्वाभिमानिनी नारी अपने पति से कहती है- **"अहं वदामि नेत त्वं सभायामह त्वं वद"**। इसके अतिरिक्त मैत्रायिणी-संहिता भी इसका प्रमाण है कि अब नारी-समाज पर सभाओं में जाने और बोलने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। **"पुमांसः सभां यान्ति न स्त्रियः"** (मै० सं० ४।७७४)।

कन्यारत्न, एक पतिव्रता नारी, यज्ञाधिकार आदि सुविधाओं से सुसज्जित ऋक्कालीन नारी, **"स्त्रियः पुंसोऽतिरिच्यन्ते"** (मै० सं०) में प्रतिपादित नारी की प्रतिष्ठा जब बहु-विवाह के व्यवहार से धूमिल होने लगी, तो "नारी" शब्द ने अपना दीर्घाकार ईकार वाला घूंघट ऊपर उठाकर उसे ह्रस्व इकार में परिवर्तित कर दिया और नारी के साथ ही नारि का भी प्रयोग होने लगा।

अन्तर स्पष्ट है कि ऋक्कालीन नारी जहाँ अपने पाणिग्रहण-संस्कार के बाद नर के सम्पर्क के कारण अपने लिए सर्वप्रथम नारी शब्द का प्रयोग करती है, वहीं अथर्वसंहिता की "नारि" अपनी सपत्नी से इतनी भयभीत रहती है कि वह अपने पति को नपुंसक बनाने में जादू, टोना आदि का प्रयोग करने में भी संकोच नहीं करती (अथर्व सं० ६।१३८।२)।

मेना-

ऋक्-संहिता (मण्डल १।६२।७, १/९५/६, २०३९।२) में "मेना" शब्द का प्रयोग नारी के लिए किया गया है। महर्षि यास्क ने "मेना" पद की व्युत्पत्ति करते हुए- **"मानयन्ति एनाः (पुरुषाः)"** (निरुक्त ३।२१२) में कहा, जिसका अर्थ है- पुरुषों द्वारा आदर पानेवाली नारी। लगता है परवर्ती साहित्य में "मेना" शब्द ही लौकिक संस्कृत में "मान्या" शब्द के रूप में परिवर्तित हो गया।

योषा-

यु धातु (जुटाना) से निष्पन्न-योषन्, योषा, योषणा, योषित् शब्द समानार्थक है, जो युवती, नारी अर्थ के आचक हैं। वैदिकवाङ्मय में "योषा" शब्द का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। योषन्-शब्द ऋक्-संहिता मण्डल (४।५।५) में, योषणा - (३५२३, ३।५६/५, ३।६२।८, ७/९५।३) में, योषा- (१४८५, १।९२।११, ३।३३१०, ३।३८।८) में, योषित्- (९।२८।४) में प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त अथर्वसंहिता (१२।३।२९, १४।१।५६, ६।१०१।१) में भो योषा, योषित् का प्रयोग हुआ है।

निरुक्त (३।१५।१) में "योषा" की व्युत्पत्ति करते हुए यास्क ने लिखा है-**"योषा यौतेः मिश्रणार्थस्य, सा हि मिश्रयति आत्मानं पुरुषेण साकम्"** । अर्थात् नारी को योषा इसलिये कहा जाता है, क्योंकि वह सर्वात्मना अपने को पुरुष के साथ मिला देती है।

युष्-परितर्कणे से **"नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः"** सूत्र से कर्ता में अच्, गुण, स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् प्रत्यय

होकर योषा शब्द निष्पन्न होता है। **"युषः सौत्रः सेवायाम्" योषति सेवते इति योषा,** अर्थात् सेवा करने वाली नारी।

जाया-

"जाया" की महिमा ऋक्संहिता (३।५३।६) में गायी गयी है। उस घर को सर्वोत्तम माना गया है, जिसमें दिव्य गुणों से मण्डित "जाया" निवास करती है। ऋक्-संहिता (३।५३।४) में नारी के सम्मानित स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है- **"हे इन्द्र ! जाया ही घर है, यही पुरुष का विश्राम स्थल है"**।

ऐतरेयब्राह्मण में जाया की प्रशंसा में कहा गया है- "आभूतिरेषा भूतिः" अर्थात् यही शोभा है, यही ऐश्वर्य है। व्युत्पत्ति करते हुए ऐतरेय ब्राह्मण में स्पष्ट कहा गया है- **(तदेव जायाया जायात्वं यदस्यां जायते पुनः")। "तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः"**। अर्थात् जाया को जाया इसलिये कहा जाता है, क्योंकि पुरुष स्वयं उसमें पुत्र-रूप में जन्म ग्रहण करता है। जायते अस्याम् अर्थात् गर्भ के आधार को जाया कहते हैं। "जनेर्यक्" सूत्र से यक् प्रत्यय होने पर जाया-शब्द निष्पन्न होता है।

ग्ना-

ऋक्-संहिता (१।१५।३, १।२२।१०, ५।४३६) में "ग्ना" शब्द का प्रयोग सामान्य नारी के अर्थ में आया है, जैसा कि आगे चल कर ब्राह्मण-ग्रन्थों में भी इसका प्रयोग हुआ है। "ग्ना" शब्द का विशेष रूप से ऋग्वेद में देवपत्नी के अर्थ में प्रयोग है- **"ग्ना देवपन्नीः"**। ऋक् संहिता (५।४६।८), तु० (१।६१।८ में) "ग्ना" शब्द का प्रयोग देवपत्नी के लिये द्रष्टव्य है।

यास्क ने- **"ग्ना गच्छन्ति एनाः"** (निरुक्त ३।२१।२) कहकर "ग्ना" शब्द की व्युत्पत्ति बतायी है, जिसका अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि नारी को "ग्ना" इसलिये कहते हैं, क्योंकि पुरुष संसर्ग की अभिलाषा से इसके पास गमन करता है। लौकिक-संस्कृत का गम्या शब्द "ग्ना" का ही विकसित रूप लगता है। परवर्ती वाङ्मय में "धेना", "मेना" शब्द मिलते हैं, जिन्हें "ग्ना" का ही परिवर्तित रूप कहा जा सकता है।

स्त्री -

ऋक्-संहिता (१।१६४।१६, ५।६१।६) में "स्त्री" शब्द का पुमांस (मनुष्य) और एक बार "वृषन्" (पुरुष) के विपरीत प्रयोग हुआ है। ऋक् संहिता दशम मण्डल में उर्वशी द्वारा पुरूरवा को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि "स्त्रियों का हृदय वृक् (भेड़िया) के हृदय के समान होता है, इनकी मित्रता कभी अटूट नहीं होती"।

ऋक् संहिता (८।३३।१७) में **"स्त्रिया अशास्यं मनः"** भी स्त्री शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसमें स्त्री को वश में रखना असाध्य माना गया है।

मैत्रायणी-संहिता, काठक-संहिता में निरुक्तकार ने श्री शब्द का प्रयोग किया है।

" स्त्री " शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए- **"स्त्यायाति गर्भो यस्यामिति"** ऐसा कहा गया है। स्त्यै - स्त्यायते से डट् प्रत्यय, ङीप् होने से "स्त्री" रूप बनता है। क्षीर-स्वामी ने भी कहा है कि नारी को वो इसलिये कहा जाता है, क्योंकि गर्भ की स्थिति उसके भीतर रहती है। भाष्यकार पतञ्जलि ने - **"शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धानां गुणानां स्त्यानं स्त्री"**। अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के विकास का नाम ही स्त्री है, क्योंकि स्त्री इन्हें वहन करती है। "स्त्ये शब्दसंघातयोः" यहाँ शब्द तथा संघात अर्थ में "स्त्यै" धातु का प्रयोग हुआ है। **"अधिकरणसाधना लोके स्त्री, स्तायत्यस्यां गर्भ इति।"** अर्थात् लोक में अधिकरण-साधना स्त्री है, जिसमें गर्भ संघात-रूप में प्राप्त होता है।

यास्क ने **"स्त्रियः एव एताः शब्दस्पर्शरूप रसगन्धहारिण्यः"** (निरुक्त अध्याय १४ खण्ड २०) कहकर पतञ्जलि के सिद्धान्त के विपरीत वहन के स्थान पर अपहरण को प्रमुखता दी है।

सुन्दरी (सूनरी) -

ऋक् संहिता में' उषादेवी के लिये सूनरी शब्द का प्रयोग हुआ है। सूनरी का शाब्दिक अर्थ है शोभा को बढ़ाने वाली। वस्तुतः "सुन्दरी" शब्द, वैदिक संहिताओं में प्रयुक्त "सूनरी" शब्द का ही विकसित रूप जान पड़ता है।

"सुष्ठु उनत्ति आर्द्रीकरोति चित्तम्" व्युत्पत्ति के अनुसार सुन्दर + ङीष् से निष्पन्न सुन्दरी (सूनरी) का अर्थ है- अपनी शोभा से देखने वाले के हृदय को द्रवित करने वाली नारी। अमरकोश के टीकाकार क्षीरस्वामी ने **"सुष्ठु नन्दयति इति नैरुक्ताः"** (अमरकोश ३।१।५२) कहा है।

वधू-

"वधू" शब्द नवविवाहिता नारी के लिये (ऋ० ८।२६।१३, १०/२७१२, १०।८५।३३ आदि स्थानों में) प्रयुक्त हुआ है। "वहति श्वसुरगृहभारं या सा" अर्थात् जो श्वसुर-घर के सम्पूर्ण भार का वहन करने वाली है अथवा "उह्यते पितृगेहात् पतिगृहम् = वधूः" इस पद की निष्पत्ति "वह्-वहो धश्च" के ऊ प्रत्यय से होती है, जिसका सामान्य अर्थ है सहचरी-गृहिणी।

पुरन्ध्रि -

पुरन्ध्रि (नगर-नेत्री) शब्द का प्रयोग नारी के लिये ऋक्-संहिता (१०।८०१) में **"अग्निर्नारीं वीरकुक्षीं पुरन्ध्रिम्"** के रूप में हुआ है। "स्वजनसहितं पुरं धारयतीति = पुरन्ध्रि" शब्द धृन् खच् + ङीष् से निष्पन्न होता है, जिसका सामान्य अर्थ है-पति-पुत्र-दुहित्रयुक्त कुटुम्ब वाली नारी। "पुरन्ध्रियोंषा"- (यजु० २२।२२) में प्रयोग हुआ है, जिसमें ईश्वर से प्रार्थना की गयी है कि हमारे राष्ट्र में सर्वगुण-सम्पन्ना नारियां उत्पन्न हों?

ऋक्-संहिता (१११६१३) में भी "पुरन्धिः" शब्द प्रयुक्त है जिसमें अश्विनी-कुमारों द्वारा पुत्रोपलब्धि की बात कही गयी है।

दम्पती-

पति-पत्नी के सामूहिक नाम दम्पति का उल्लेख (ऋ० ५।३।८, ८३५५, १०।१०।५, १०६८/२, १०/८५/३२, एवं अथर्वसंहिता - ६।१२३३, ११।३।१४, १४।२।९ में) हुआ है।

जाया च पतिश्च इस द्वन्द्व समास से सम्पन्न होने वाले शब्द में "जाया" शब्द के स्थान पर दमादेश हो जाता है।

पत्नी-

ऋक् संहिता (१०।८५/३९), अथर्व-संहिता (९।३।७), तैत्तिरीय-संहिता (६।५।१।४) तथा मैत्रायणी-संहिता (१।५।८) में पत्नी शब्द का प्रयोग मिलता है।

पाति रक्षति पा+ इ ति से निष्पन्न रूप में ङीप् और नुक् आगम लगाने से बना "पत्नी" शब्द सहधर्मिणी का बोधक है।

जनि, जनी-

पत्नी के अर्थबोधन में दोनों शब्दों का प्रयोग संहिताओं में हुआ है। ऋक् संहिता (४।५२१) में "जनी" शब्द का प्रयोग हुआ है। ऋक्संहिता (१।८५।१, ४/५/५, ७/१८।२, ९।८६/३२) तथा वाजसनेयि-संहिता (१२।३५; २०४०४३) में इन शब्दों के प्रयोग मिलते हैं।

जन् + इन् = जनि तथा जनि + ङीष् से जनी शब्द निष्पन्न होते हैं।

विधवा-

विधवा (पतिविहीना) शब्द का प्रयोग (ऋ० ४।१८।१२, १०४०२) और ८ में हुआ है। ऋक्-संहिता (१०।१८।७) में अविधवा नारियों का वर्णन है, जिससे विधवा नारियों के अस्तित्व का भान होता है।

विगतो धवो भर्त्ता यस्याः सा - विधवा। इस व्युत्पत्ति से भी पतिरहिता नारी का ज्ञान होता है।

सती-

सती शब्द का प्रयोग अथर्वसंहिता (१८।३।१) में मिलता है। सत् + ङीष् से निष्पन्न इस शब्द का अर्थ है साध्वी नारी, जो मनसा, वाचा, कर्मणा पतिपरायणा रहती है।